IMPACT FACTOR 5.397 (SJIF USA)
बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM
Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 1, January-March, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.20743126
ISSN : 3048-6971

आधे अधूरे मन की व्यथा : आधे - अधूरे

श्वेता सिंह
शोधार्थी
मानविकी विभाग (हिंदी)
श्री लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय
नई दिल्ली
ई – मेल : shwetasinghrajput1995@gmail.com

साहित्य समाज का प्रतिबिंब ही नहीं बल्कि उसके भीतर व्याप्त विसंगतियों का जीवंत दस्तावेज भी होता है। मोहन राकेश द्वारा रचित नाटक **'आधे-अधूरे'** (1969) स्वतंत्रता के उपरांत भारत के मध्यवर्गीय समाज की सुलगती हुई आंतरिक व्यथा और मानसिक अंतर्द्वंद का यथार्थवादी चित्रण है। इस संदर्भ में 'विश्वनाथ त्रिपाठी' का वक्तव्य है - **"आधे-अधूरे (1969) स्वातंत्र्योत्तर भारत का पहला हिन्दी नाटक है, जिसमें टूटते हुए पारिवारिक मूल्यों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत किया गया है।"**[1] ऊपरी तौर से देखने पर इस नाटक का केंद्र एक मध्यवर्गीय परिवार और उसके भीतर रहने वाले सदस्यों की आर्थिक व मानसिक दशा व समस्या की कहानी है परंतु यह नाटक केवल इतना भर ही नहीं है। यह आधुनिक मनुष्य की नियति का दस्तावेज है। जहां भीड़ में होकर भी प्रत्येक मनुष्य महानगरीय जीवन में अकेला होने के लिए अभिशप्त है। जिसको नाटककार ने बखूबी से उकेरा है। इस संदर्भ में 'रामस्वरूप चतुर्वेदी' कहते है कि **"राकेश जैसा उन्मुक्त जीवन का अभ्यस्त रचनाकार अंततः परिवार की ऐंठन की समस्या को उठाए इससे प्रकट होता है कि जीवन का यह पक्ष हिंदी लेखक की चिंता के केंद्र में आरम्भ से अब तक चला आ रहा है।"**[2]

नाटक का मूल केंद्र 'अधूरेपन' का एहसास है। यह अधूरापन किसी एक स्थिति, दशा, पात्र अथवा संबंध का नहीं है अपितु यह अधूरापन पूरे नाटक में अनेकों स्तर पर व्याप्त है। पता नहीं चलता कि ये अधूरापन कब आर्थिक अपूर्णता से मनोवैज्ञानिक स्तर पर अपनी गहरी छाप छोड़कर प्रत्येक पात्र के जीवन से लेकर घर की स्थिति व सामान तक अपनी जड़ें गहरी कर लेता है। घर के सदस्यों से लेकर बाहर से आए हुए लोगों तक सब में अधूरापन दिखाई देता है जिसकी धुरी सावित्री बन जाती है। नाटक का प्रत्येक पात्र सावित्री से किसी न किसी रूप से जुड़ा दिखाई देता है। सावित्री को प्रत्येक आदमी अपने में कुछ अधूरा-सा प्रतीत होता है। जिसकी पूर्णता की तलाश में उसके जीवन में कई पुरुष आते है परन्तु सभी में कुछ कम रह जाता है। नाटक के शुरुआत से अंत तक वह किसी आत्मा की भांति भटकती नजर आती है। कई आलोचकों का मानना है कि सावित्री स्वयं में ही अधूरी है इसलिए उसको कोई भी पूरा नहीं दिखाई देता है। नाटककार ने सावित्री के जीवन की इस अपूर्णता को दृश्य - योजना में भी प्रतीकात्मक तौर पर दर्शाया है। 'हरीश नवल' अपनी पुस्तक में लिखते हैं कि **"हिंदी रंगमंच पर 'आधे- अधूरे' एक क्रांतिकारी नाम हैं। यह नाटक यथार्थवादी प्रतीक शैली पर आधारित है। कमरे के तीन दरवाज़े नायिका के जीवन में आने वाले तीन पुरुषों का प्रतीक है।"**[3] सावित्री का अधूरापन उसके भीतर तक सीमित नहीं रहता है। वो नाटक में आए सभी पात्रों में दिखाई देता है। इस नाटक के सभी पात्र दोहरे अलगाव से जूझते हुए दो स्तर पर अधूरे है - एक परिवार के स्तर पर दूसरा स्वयं के स्तर पर। महानगरीय जीवन में आज भी लगभग मध्यवर्गीय परिवारों की स्थिति कुछ इसी प्रकार की दिखाई देती है। 'इब्राहिम अल्काज़ी' अपने लेख में कहते है- **"यह नाटक मध्यवर्गीय जीवन की शुष्क, विनाशकारी रिक्तता का प्रखर दस्तावेज है और विकृत मूल्यों , भ्रांतियों एवं दोगली नैतिकता का निर्मम अनावरण,जो उस रिक्तता के कारण है।"**[4]

अक्सर हम पाते हैं की वास्तविक जीवन में दो अधूरे व्यक्ति एक साथ होकर एक दूसरे को पूर्ण करते हैं परंतु सावित्री और महेंद्रनाथ अपने आप में इतने अधूरे हैं, जो साथ होकर एक-दूसरे को पूर्ण करने की बजाय एक-दूसरे के अधूरेपन के एहसास को और बढ़ाते हैं। उनका आपसी तनाव उनके तीनों बच्चों के जीवन को भी प्रभावित करता है। इस विषय पर 'ममता धवन' लिखती है कि **"...उनके व्यक्तित्व को ऋणात्मक रूप से प्रभावित कर उन्हें हीन, खंडित, विक्षिप्त और आधा-अधूरा बना देती है। माता-पिता के संबंध की सहजता के अभाव एवं अपूर्णता के कारण ये तीनों बच्चे त्रासद नियति और मानसिक विकृति के भोक्ता बनकर रह जाते हैं। एक उलझी और अधूरी जिंदगी इन्हें विरासत में मिलती है।"**[5] पात्रों मे व्याप्त यह अधूरापन व्यक्तित्व,परिस्थितियों व संबंधों का परिणाम है। जहां प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कटा हुआ है ।यह आपसी अलगाव नितांत अकेलापन लाता है। जो मनुष्य को हताशा, तनाव, द्वंद व खीझ से भरे अनवरत जीवन संघर्ष में जूझने को बाध्य कर देता है। **"मध्यवर्गीय जीवन में आने वाली शुष्क और विनाशकारी रिक्तता उघाड़ने वाला यह नाटक मनुष्य के खोखलेपन,संबंधों के सतहीपन तथा पारिवारिक जीवन दशाओं व आस्थाओं से लड़खड़ाते मानदंडों को सजीव रूप से प्रस्तुत करता है।...स्त्री पुरुष के लगाव व तनाव तथा पारिवारिक विघटन की यह गाथा अपने में अधूरे मनुष्य की काल्पनिक पूर्णता की खोज की महत्वाकांक्षा की यातना को उजागर करती है।"**[6]

यदि हम एक-एक करके प्रत्येक पात्र की ओर दृष्टिपात करें तो हम पाते हैं कि महेंद्रनाथ स्वयं को पूरा एक रबर का स्टैंप तक न मानकर केवल रबड़ का टुकड़ा भर कहता है। वही उसकी बड़ी बेटी बिन्नी जो इस घुटन वाले जीवन से छुटकारा पाने के लिए भागकर मनोज से विवाह करती है। वह भी अपने जीवन में खुश नहीं है। कुछ ऐसा अधूरापन वह अपने साथ लेकर गई है,जिसकी तलाश करने वह बार-बार वापस इसी घर में आती है। यह अधूरापन उसके वैवाहिक जीवन को भी घुन भांति खाने लगा है। वहीं छोटी बेटी किन्नी जिसके बाल मन पर इस पूरी स्थिति का गहरा असर पड़ रहा है। जिसका परिणाम उसके व्यवहार में दिखाई देने लगा है। वो बत्तमीज़,ज़िद्दी और बड़ों की बातों में रुचि लेने वाली लड़की बनती जा रही है । नाटककार ने प्रत्येक पात्र के जीवन की अपूर्णता को उनके जीवन की गतिविधियों व आचरण में भी दिखाया है । **"सभी पात्र अपनी इच्छाओं की पूर्ति और आचरण में अपूर्ण है। अधूरेपन का यह एहसास हमारे युग की नियति है"।**[7] एक ओर बिन्नी अपने जीवन की अपूर्णता को दूर करने के लिए एक अज्ञात हवा की तलाश में भटक रही है। वहीं दूसरे ओर अशोक कुछ कार्य करने में दिलचस्पी नहीं लेता है।उसकी पढ़ाई भी अधूरी है, नौकरी भी बीच में छोड़ दी और चित्र काटने का काम जो स्वयं की इच्छा से दिलचस्पी से करता है।वह भी आधी कटी हुई घर में इधर-उधर बिखरी मैगजीन के रूप में अधूरा दिखाई देती है। किन्नी का अधूरापन उसके भीतर अब भी बचे बचपन को दिखाता है। उसकी चिंता है तो दूध न मिलने की, मोजे खराब होने तथा सिलाई के लिए रील न मिलने पर क्लास में होने वाली बदनामी की। जहां बिन्नी का अंत अपनी मां सावित्री जैसा और अशोक अंत अपने पिता महेंद्रनाथ जैसा प्रतीत होता है। वही किन्नी एक ऐसी पात्र है,जिसमें कुछ उम्मीद अभी बाकी दिखाई देती है। यहां प्रत्येक सदस्य अपनी अपूर्णता में संतुष्ट होकर बैठा नहीं है बल्कि उससे निकल जाने की छटपटाहट उनमें निरंतर दिखाई देती है। महेंद्रनाथ का अपने मित्र के यहां भाग जाना, सावित्री का जगमोहन के साथ जाने का कदम,मौका मिलने पर बिन्नी का शादी कर लेना, अशोक का बिन्नी से बातचीत के दौरान घर से निकल जाने का विचार और हर बात पर गुस्सा होकर किन्नी का पैर पटक के घर से बाहर भाग जाना। ये प्रत्येक पात्र के भीतर की अपूर्णता को दिखाता है, जो संपूर्णता की खोज में भटक रहे हैं। इसके संदर्भ में 'समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच' पुस्तक में उद्धत है कि **"आधे-अधूरे नाटक टूटते बिखरते मानवीय संबंधों का नाटक है, जिसमें हर व्यक्ति अपूर्ण है, लेकिन संपूर्ण का प्राप्त करने की वाक़्का का लिए हुए हैं।"**[8] इस अधूरेपन की मनोव्यथा केवल घर के सदस्यों तक ही सीमित नहीं है बल्कि बाहर से आए पात्रों जगमोहन, सिंघानिया,जुनेजा में भी किसी न किसी रूप में

दिखाई देती है। इस नाटक का एक मुख्य पात्र काले कोट वाला आदमी जो स्वयं को खंडो में बांटकर चार पुरुषों की भूमिका में दिखाई देता है। सोचने पर मजबूर कर देता है कि क्या वह स्वयं कई टुकड़ों में बांटा हुआ अपूर्ण है अथवा अलग-अलग पात्रों में अपनी तरह से पूर्ण है। विद्वानों का कहना है कि असल में पूर्ण कुछ नहीं है स्वयं में एक भ्रामक खोज है। वास्तव में प्रत्येक मनुष्य अपने तरह की अपूर्णता को लिए हुए स्वयं में पूर्ण है। 'स्वप्ना उप्रेती' लिखती है कि **"जहां हर व्यक्ति अपूर्ण है और संपूर्णता की खोज में भटक रहा है लेकिन उसे संपूर्णता को और साथ ही उसे आत्मीयता को पाना सभी के लिए मुश्किल है क्योंकि संपूर्णता कभी किसी को प्राप्त नहीं होती।"**[9] मोहन राकेश ने इस नाटक में अधूरेपन को केवल पात्र-योजना द्वारा ही नहीं दर्शाया है बल्कि दृश्य-योजना (घर के भीतर में टूटा-फूटा बिखरा सामान),संवाद-योजना(पात्रों द्वारा बोले गए अधूरे वाक्य), संगीत-योजना में भी इसको प्रतीकात्मक रूप से उकेरा है। यह अधूरापन आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक दोनों स्तर पर दिखाई देता है। परिवार में एक सदस्य की असंतुष्टि और अधूरापन कैसे पूरे परिवार को प्रभावित कर नरक का जीवन जीने के लिए अभिशप्त कर देता है। इसका सटीक उदाहरण है आधे- अधूरे है। 'डॉ. दिनेशचंद्र वर्मा' लिखते हैं कि **"विडंबना यह है कि व्यक्ति स्वयं अधूरा होते हुए भी दूसरों के अधूरेपन को सहना नहीं चाहता और काल्पनिक पूरेपन की तलाश में भटककर अपनी और दूसरों की जिंदगी नरक बना देता है।"**[10] यह नाटक किसी एक मनुष्य के जीवन की अतृप्त व अपूर्णता की गाथा ही नहीं है बल्कि वर्तमान समय में महानगरीय जीवन में प्रत्येक घर में,प्रत्येक सदस्य की आर्थिक व मानसिक स्थिति है। 'रमेश गौतम लिखते हैं कि **"आधुनिक व्यक्ति की यातनापूर्ण नियति और अस्तित्व के संकट को आधे-अधूरे में अभिव्यक्ति मिली है। आधे-अधूरे की कहानी किसी विशेष व्यक्ति की कहानी न होकर किसी भी आदमी की कहानी हो सकती है क्योंकि व्यक्ति भिन्नता होने से आदमी बदल जाता है लेकिन परिस्थितियां वही रहती हैं।"**[11]

यह कहना अतिशयोक्ति तो ना होगा कि 'मोहन राकेश' द्वारा रचित नाटक 'आधे-अधूरे' केवल एक नाटक भर न होकर यह अपूर्ण मन की व्यथा की महागाथा है। इस संदर्भ में 'सपना उप्रेती' का वक्तव्य सटीक बैठता है **"आधे-अधूरे अपूर्ण या आधे-अधूरों का जमानानामा है।"**12

संदर्भ - ग्रंथ :

1. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि. - 2010, पृ.स. 166
2. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन - 1986, पृ.स. 243
3. हिंदी नाटक : तीन दशक, हरीश नवल, अनंग प्रकाशन - 2004, पृ. स. 45-46
4. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक, सं. नेमिचंद जैन, राजपाल प्रकाशन, पृ. स. 340
5. हिंदी नाटक - विमर्श के विविध आयाम, ममता धवन, स्वराज प्रकाशन, पृ. स. 93
6. समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, डॉ. दिनेशचंद वर्मा, चिंतन प्रकाशन - 2003, पृ. स. 222-223
7. हिन्दी साहित्य का सरल इतिहास, विश्वनाथ त्रिपाठी, ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लि. - 2010, पृ. स. 166
8. समकालीन हिंदी नाटक और रंगमंच, सं. डॉ. नगेंद्र मोहन, वाणी प्रकाशन - 2009, पृ. स. 236
9. मोहन राकेश के नाटक, स्वप्ना उप्रेती,तारामंडल, पृ. स. 91
10. समकालीन हिंदी नाटक एवं नाटककार, डॉ. दिनेशचंद वर्मा, चिंतन प्रकाशन - 2003, पृ. स. 222-223
11. हिंदी के प्रतीक नाटक, रमेश गौतम के लेख से,नचिकेता प्रकाशन -1979 ,पृ. स. 289
12. मोहन राकेश के नाटक, स्वप्ना उप्रेती,तारामंडल, पृ. स. 81